स्वस्थ खाएं, पर्यावरण बचाएं

एस. अनंतनारायणन

जिसने भी अल गोर की यादगार फिल्म 'एन इनकन्वीनिएंट ट्रुथ' देखी है, उसे ज़रूर इस बात से इत्तेफाक होगा कि शाकाहार धरती की रक्षा कर करता है। फिल्म में पिछले दशकों में विकास की होड़ पर सवाल उठाए गए हैं जिसके चलते पर्यावरण में ग्रीन हाउस गैसों की मात्रा इस हद तक बढ़ चुकी है कि ग्लोबल वार्मिंग एक खतरा बन गई है।

कार्बन डाईऑक्साइड, मीथेन और नाइट्रस ऑक्साइड जैसी गैसों के अणु न सिर्फ आकार में बड़े और भारी होते हैं बल्कि काफी ऊर्जा को संग्रह करके रखने में समर्थ होते हैं। यह सब कुछ सामान्य वातावरणीय गैसों जैसे नाइट्रोजन, ऑक्सीजन, हाइड्रोजन आदि से बिल्कुल इतर है। यही कारण है कि इन भारी गैसों को ग्रीन हाउस गैसों के नाम से जाना जाता है और यही ताप का संचय कर वातावरण के ताप को बढ़ा देती हैं।

तापमान बढ़ने के तात्कालिक प्रभाव हमें ध्रुवों और ग्लेशियर की पिघलती बर्फ, बढ़ते समुद्री जल स्तर और वातावरण में हो रहे आकस्मिक एवं अनअपेक्षित बदलाव के रूप में दिखने लगे हैं। लेकिन खतरा यह है कि लगातार पिघलते और कम होते जा रहे ग्लेशियरों के चलते चीन और भारत के बड़े-बड़े नदी तंत्रों के जल स्रोत तेज़ी से घट रहे हैं। आज इन स्रोतों पर आश्रित लोग कल इनके उपयोग से वंचित हो जाएंगे। इसके सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक परिणाम न सिर्फ इन देशों को बल्कि सम्पूर्ण विश्व को प्रभावित करेंगे।

सर्वाधिक ग्लोबल वार्मिंग पेट्रोल इंजिनों (जैसे कारें, हवाई जहाज़) और कोयले या पेट्रोलियम को जलाकर बिजली बनाने जैसी गतिविधियों के कारण होता है। इसके चलते दुनिया पर दबाव है कि यातायात साधनों का उपयोग कम-से-कम हो, अधिक कार्यकुशल कारों का निर्माण किया जाए, औद्योगिक प्रक्रियाओं को बेहतर बनाया जाए और बिजली बनाने के अन्य साधनों जैसे हवा, ज्वार-भाटा, सूर्य का प्रकाश अथवा परमाणु ऊर्जा का उपयोग किया जाए ताकि पर्यावरण की रक्षा की जा सके और लगातार संकुचित हो रहे पानी के स्रोतों को बचाया जा सके।

यह सर्वविदित है कि दुनिया में अलग-अलग देशों में पानी की उपलब्धता और उपभोग में काफी गैर-बराबरी है। इसका अंदाज़ा इसी बात से लगाया जा सकता है कि एक अमेरिकी नागरिक बुरूंडी या युगांडा के एक व्यक्ति की तुलना में 100 गुना अधिक पानी इस्तेमाल करता है। एक आम व्यक्ति को स्वस्थ रहने के लिए रोजाना कम से कम 50 लीटर पानी की ज़रूरत होती है, जिसमें पीने, भोजन बनाने, साफ-सफाई की ज़रूरतें शामिल हैं। लेकिन लगभग 55 ऐसे देश होंगे जहां इतना भी पानी उपलब्ध नहीं है। दुनिया भर में कम से कम 100 करोड़ लोग ऐसे हैं जिन्हें पीने के लिए भी पर्याप्त पानी नसीब नहीं है और दुनिया की आधी आबादी तो ज़रूरी शौच व्यवस्था से भी वंचित है।

1996 में यह अंदाज़ा लगाया गया था कि हम लोग कुल उपलब्ध स्वच्छ पानी में से आधे से अधिक का उपयोग कर रहे हैं जो 1950 में उपयोग किए जा रहे पानी की मात्रा से 3 गुना अधिक था। तब यह अनुमान भी लगाया गया था कि यदि ऐसे ही चलता रहा तो 2030 तक हमारी ज़रूरतें उपलब्धता से ज़्यादा हो जाएंगी। यह तब की बात है जब पानी के स्रोत गुम होना शुरू नहीं हुए थे।

यह सही है कि जैव ईंधन के दहन को ग्लोबल वार्मिंग के सबसे बड़े कारण के रूप में पहचाना गया है मगर एक दूसरा बड़ा कारण और है जिसके चलते ग्रीनहाउस गैसों में इज़ाफा और पानी की कमी हो रही है। वह है मांस का उपभोग। संयुक्त राष्ट्र के खाद्य एवं कृषि संगठन द्वारा जारी एक रिपोर्ट में दर्शाया गया है कि मांसाहार और पशु पालन के व्यवसाय से कुल वैश्विक ग्रीनहाउस गैस का 18 प्रतिशत उत्पन्न होता है, जो दुनिया भर के यातायात साधनों द्वारा उत्पन्न कुल ग्रीन हाउस गैसों से अधिक है। इसमें यदि मांस उत्पादन में उपयोग होने वाले पानी को भी जोड़ दिया जाए, तो पता चलता है कि यदि हमें दुनिया को इस बड़ी

समस्या से बचाना है तो हमें खाने की आदत बदलने पर विचार करना होगा।

पशु पालने में लगे फार्म हाउस विश्व स्तर पर होने वाले कुल मीथेन उत्सर्जन में से 37 प्रतिशत के लिए ज़िम्मेदार हैं। मीथेन एक ऐसी ग्रीनहाउस गैस है जो कार्बन डाईऑक्साइड से 23 गुना ज़्यादा असर रखती है। इसके अलावा 65 प्रतिशत नाइट्रस ऑक्साइड भी पशु पालन से पैदा होती है। नाइट्रस ऑक्साइड कार्बन डाईऑक्साइड के मुकाबले 296 गुना अधिक ग्लोबल वार्मिंग प्रभाव रखती है। अकेले अमेरिका में पाले गए पशु सम्पूर्ण मानव समुदाय की अपेक्षा 130 गुना अधिक मल पैदा करते हैं। इसके अलावा 64 प्रतिशत अमोनिया का उत्सर्जन भी इस गतिविधि के हिस्से आता है। यदि हम दुनिया भर के फार्म हाउस में पल रहे पशुओं की बात करें तो इस समय उनकी संख्या लगभग 5500 करोड़ होगी। तुलना करें तो गौमांस उत्पादन सबसे अधिक कार्बन उत्सर्जन के लिए जवाबदेह है। प्रति कि.ग्रा. गौमांस उत्पादन में 34.6 कि.ग्रा. कार्बन डाईऑक्साइड उत्सर्जित होती है।

मांस उत्पादन एक ओर तो कार्बन उत्सर्जन बढ़ाता है जो ग्लोबल वार्मिंग और पानी की समस्या के लिए ज़िम्मेदार है। इसके अलावा यह गतिविधि पानी के बेतहाशा उपयोग की भी दोषी है। एक कि.ग्रा. गौमांस के उत्पादन में तकरीबन 15 टन पानी लगता है जबकि इतने पानी से 300-400 कि.ग्रा. अनाज का उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रकार से एक बड़े भूभाग, पानी, ज़मीन, ईंधन और मानवीय संसाधनों का उपयोग, चावल, गेहूं और पर्यावरण को दांव पर लगाकर सिर्फ सस्ते मांस के उत्पादन में किया जा रहा है। कितने आश्चर्य की बात है कि मांस की उत्पादकता बढ़ाने के चक्कर में अनाज की पैदावार प्रभावित हो रही है। इसका एक पक्ष यह भी है कि दुनिया की कुल अनाज पैदावार में से भी लगभग 40 प्रतिशत जानवरों को खिलाने में इस्तेमाल होता है।

अगर मांस के उत्पादन में प्रयुक्त संसाधनों का लेखा-जोखा तैयार किया जाए तो विचित्र स्थिति नज़र आती है। धरती की कुल ज़मीन के 26 प्रतिशत हिस्से में चारागाह हैं और 33 प्रतिशत कृषि भूमि में उगा अनाज भी जानवर खाते हैं। मांस की बढ़ती मांग के चलते जंगलों की कमी, भूक्षरण, अति-चराई और स्थानीय निवासियों के पलायन की समस्या बढ़ रही है। अमेज़न के वर्षा वनों की 70 प्रतिशत ज़मीन अब चारागाह में बदल चुकी है और शेष ज़मीन की उपज भी जानवरों के ही काम आती है। पृथ्वी के पर्यावरण को तहस-नहस करने में यातायात, विद्युत उत्पादन, प्लास्टिक आदि के योगदान को अपनी खान-पान की आदत बदल कुछ हद तक कम किया जा सकता है। ***(स्रोत फीचर्स)***